क्या आपको अपने विवेक की बात माननी चाहिए?

आम तौर पर कहा जाता है ''जैसे तुम्हारा विवेक कहता है वैसे ही करो।'' साधारणत: धर्म में यह माना जाता है कि यदि कोई अपने विवेक की बात मानकर चलता है, तो सब कुछ ठीक-ठाक होगा। इस पाठ में हम पूछ रहे हैं, ''क्या आपको अपने विवेक की बात माननी *चाहिए?*'' मेरा उत्तर कुछ-कुछ राजनीतिज्ञों की तरह है, क्योंकि मेरा उत्तर ''हां'' और ''नहीं'' दोनों है। उम्मीद है कि आप मुझे सुनेंगे ताकि आप समझ जाएं कि मेरे ऐसे कहने का क्या अर्थ है। आइए ''नहीं'' वाले उत्तर से आरम्भ करते हैं:

''नहीं'': धार्मिक मामलों में केवल विवेक की बात मानना ही काफ़ी नहीं है

बाइबल में यह बात स्पष्ट है कि धर्म में विवेक की बात मानना सुरक्षित नहीं है। पौलुस के उदाहरण पर विचार कीजिए। पौलुस सदा अपने विवेक के कहने पर चलता था। उसने यहूदी सभा को बताया, ''हे भाइयो, मैंने आज तक परमेश्वर के लिए बिल्कुल सच्चे विवेक से जीवन बिताया है'' (प्रेरितों 23:1ख)। राजा अग्रिप्पा को उसने बताया, ''मैंने भी समझा था कि यीशु नासरी के नाम के विरोध में मुझे बहुत कुछ करना चाहिए'' (प्रेरितों 26:9)। तीमुथियुस को लिखते हुए उसने ''परमेश्वर की सेवा मैं अपने बापदादों की रीति पर शुद्ध विवेक से करता हूं'' (2 तीमुथियुस 1:3) की बात की।

यद्यपि पौलुस का विवेक हमेशा उसके कार्यों को स्वीकृति देता था, परन्तु मसीही बनने से पहले उसने बहुत से ऐसे काम किए जिनसे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता था, जिसमें यीशु को ठुकराना, मसीही लोगों को सताना और निर्दोष पुरुषों तथा स्त्रियों की हत्या करना शामिल था। उसने अग्रिप्पा के सामने बताया:

> और मैंने यरूशलेम में ऐसा ही किया; और महायाजकों से अधिकार पाकर बहुत से पवित्र लोगों को बन्दीगृह में डाला, और जब वे मार डाले जाते थे, तो मैं भी उनके

> विरोध में अपनी सम्मति देता था। और हर आराधनालय में मैं उन्हें ताड़ना दिला दिलाकर यीशु की निन्दा करवाता था, यहां तक कि क्रोध के मारे ऐसा पागल हो गया, कि बाहर के नगरों में भी जाकर उन्हें सताता था (प्रेरितों 26:10, 11)।

तीमुथियुस को उसने बताया ''कि मसीह यीशु पापियों का उद्धार करने के लिए जगत में आया, जिन में सब से बड़ा मैं हूं'' (1 तीमुथियुस 1:15ख)।

1 कुरिन्थियों 4:4 में पौलुस ने कहा, ''क्योंकि मेरा मन मुझे किसी बात में दोषी नहीं ठहराता, परन्तु इससे मैं निर्दोष नहीं ठहरता, क्योंकि मेरा परखने वाला प्रभु है।'' वाक्यांश ''मेरा मन'' ''विवेक'' के लिए यूनानी शब्द के क्रिया रूप का अनुवाद है। वास्तव में पौलुस ने कहा, ''चाहे मेरा विवेक मुझे दोषी नहीं ठहराता, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मैं सही हूं; यह निर्णय तो केवल परमेश्वर ही ले सकता है कि मैं सही हूं या नहीं।''

प्रमाण देने के लिए कि धर्म में विवेक अच्छी तरह अगुआई नहीं कर सकता, बाइबल से और प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव से और भी कई बातें जोड़ी जा सकती हैं। बाइबल में, लोग आम तौर पर विवेक से किसी विचार को सही मानते थे, जबकि वे सही थे नहीं। उदाहरण के लिए, जब याकूब ने यूसुफ का खून से रंगा चोगा देखा था, तो उसने सचमुच यह विश्वास कर लिया था कि उसके पुत्र को जंगली जानवरों ने मार दिया है (उत्पत्ति 37:31-35) है।

लोग ईमानदार होने पर भी गलत हो सकते हैं और यह बहुत गम्भीर गलती हो सकती है। ''ऐसा मार्ग है, जो मनुष्य को ठीक देख पड़ता है, परन्तु उसके अन्त में मृत्यु ही मिलती है'' (नीतिवचन 14:12; 16:25 भी देखिए)। झूठ पर विश्वास करके नाश होना भी सम्भव है (2 थिस्सलुनीकियों 2:10-12)। स्वतन्त्रता केवल सत्य ही दिला सकता है (यूहन्ना 8:32)।

अकेला विवेक जीवन के किसी भी क्षेत्र में अगुआई के लिए पर्याप्त नहीं है:[1] यात्रा में यह अचूक मार्गदर्शक नहीं है; मैं विवेकपूर्ण मानता था कि मैं सही मार्ग से जा रहा था जबकि वास्तव में मैं अपनी मंजिल से दूर जा रहा था। यह स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित मार्गदर्शक नहीं है; डॉक्टरों ने अपने मरीज़ों का पूरे विवेक से इलाज किया, परन्तु बाद में पता चला कि उन्होंने उनका इलाज तो किसी और बीमारी के लिए ही कर दिया था। विवेक व्यापार के लिए मार्गदर्शक नहीं है; बहुत से लोगों ने अच्छे विवेक से नये व्यापार शुरू किए, लेकिन उन्हें अपना सब कुछ गंवाना पड़ा। यह विवाह के लिए भी पर्याप्त मार्गदर्शक नहीं है; जिन लोगों को लगता था कि वे अपनी पसन्द के जीवन साथी को अच्छी तरह जानते हैं, उन्हें बाद में पता चला कि वे उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। (याकूब पूरे विवेक से मानता था कि वह राहेल के साथ विवाह कर रहा है जबकि वास्तव में विवाह वह उसकी बहन लिआ से कर रहा था [उत्पत्ति 29:21-30]!)

धर्म में अकेले विवेक की अगुआई अपर्याप्त *क्यों* है? मुख्य कारण यह है कि विवेक अपने उपलब्ध *ज्ञान* से सीमित है।

हमने पिछले पाठ में ध्यान दिया कि हर किसी के पास विवेक है। लोगों को स्वाभाविक ही पता होता है कि कुछ काम सही हैं और कुछ गलत। फिर, अधिकतर लोगों को यह समझ होती है कि कुछ विशेष कार्य सही हैं और कुछ गलत। (मैंने पहले टिप्पणी की थी कि बहुत से लोग यहूदियों के साथ हिटलर के व्यवहार को गलत ठहराएंगे।)

परन्तु, ऐसे बुनियादी मसलों के आगे, किस विवेक को क्या सही लगता है और क्या गलत, यह इस पर निर्भर करता है कि उसे क्या सिखाया गया है। बहुत से लोग मूर्तियों की पूजा करते हैं, एक से अधिक (स्त्री/पुरुष) से शारीरिक सम्बन्ध रखते हैं या लोगों को गुलाम बनाते हैं; परन्तु उनके विवेक उन्हें दोषी नहीं ठहराते क्योंकि उन्हें ऐसा ही सिखाया गया है। जब विभिन्न पृष्ठभूमियों की संस्कृतियां मिलती हैं तो विवेक के झगड़े बढ़ जाते हैं। जब अंग्रेज़ों ने भारत को अपने अधीन किया तो उन्हें लगा कि पुरानी परम्पराओं को समाप्त कर देना चाहिए। उनमें से एक विधवा को अपने मरे हुए पति की चिता में जला देने की (सती) प्रथा थी। अंग्रेज़ों ने इस प्रथा को बन्द करने के लिए कानून बनाने की पेशकस की। एक भारतीय धार्मिक नेता ने अंग्रेज़ अधिकारी के पास आकर आपत्ति की: ''हमारा विवेक हमें बताता है कि विधवा को जल जाना चाहिए।'' अधिकारी ने उत्तर दिया, ''और हमारा विवेक हमें बताता है कि यदि तुम ऐसा करोगे, तो हम तुम्हें फांसी पर लटका देंगे!''

पिछले पाठ में, मैंने न्यायाधीश, गवाह, न्याय मण्डली और जल्लाद सबके विवेक की तुलना की थी। परन्तु, कानून बनाना न्यायाधीश, गवाह, न्याय मण्डली, या जल्लाद का काम नहीं है। बल्कि, उनका उद्देश्य कानून को लागू करना है। वैसे ही, विवेक न्यायपालिका और कार्यवाहक संस्था है, वैधानिक नहीं। यह केवल उपलब्ध आध्यात्मिक तथा नैतिक नियमों को लागू कर सकती है।

1 कुरिन्थियों 8 से 10 और रोमियों 14 और 15 में ''बलवान'' और ''निर्बल'' विवेकों की परिभाषाओं पर ध्यान दें। ''बलवान'' विवेक (रोमियों 15:1) वाला व्यक्ति वह था जिसे मूर्तियों के सामने बलिदान किए हुए भोजन के बारे में सही *ज्ञान* था:

> सो मूरतों के साम्हने बलि की हुई वस्तुओं के खाने के विषय में *हम जानते हैं,* कि मूरत जगत में कोई वस्तु नहीं, और एक को छोड़ और कोई परमेश्वर नहीं (1 कुरिन्थियों 8:4)।
>
> क्योंकि यदि कोई तुझ *ज्ञानी को* मूरत के मन्दिर में भोजन करते देखे, और वह निर्बल जन हो, तो क्या उसके विवेक में मूरत के साम्हने बलि की हुई वस्तु के खाने का हियाव न हो जाएगा। इस रीति से *तेरे ज्ञान* के कारण वह निर्बल भाई जिसके लिए मसीह मरा नाश हो जाएगा (1 कुरिन्थियों 8:10, 11)।

दूसरी ओर, ''निर्बल'' विवेक (रोमियों 15:1) वाले को वह ज्ञान नहीं था: ''परन्तु *सब को यह ज्ञान नहीं*; परन्तु कितने तो अब तक मूरत को कुछ समझने के कारण मूरतों के

साम्हने बलि की हुई वस्तु को कुछ समझकर खाते हैं, और उनका विवेक निर्बल होकर अशुद्ध होता है'' (1 कुरिन्थियों 8:7)।[2]

किसी ने कहा है कि ''विवेक अपने आपको किसी व्यक्ति के उच्चतम मापदण्ड तक जोड़ता है।'' कार्य करने वाला शब्द ''जानना'' है। परिपक्व ज्ञान (अर्थात, वचन का ज्ञान) अच्छाई और बुराई की परख करने के योग्य बनाता है (इब्रानियों 5:13, 14)।

इसलिए, अतिमहत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं कि ''मेरा विवेक सही किसे कहता है?'' बल्कि यह है '' *परमेश्वर का वचन* सही किसे कहता है?'' लिखा है, ''क्योंकि जो अपनी बड़ाई करता है, वह नहीं, परन्तु जिस की बड़ाई प्रभु करता है, वही ग्रहण किया जाता है'' (2 कुरिन्थियों 10:18)।

बड़ी समझदारी से कहा गया है कि ''विवेक सुरक्षित ढंग से तब तक ही अगुआई कर सकता है जब इसकी अगुआई सुरक्षित ढंग से होगी'' अर्थात, ''वचन की शिक्षा देकर इसकी अगुआई की जाए।'' लोगों को शिशुओं का ''बपतिस्मा'' करते, सप्ताह के पहले दिन के अलावा और दिनों में प्रभु भोज लेते, या आराधना में वाद्य संगीत का प्रयोग करते देखने पर प्रश्न यह नहीं कि ''क्या लोग विवेकशील हैं?'' बल्कि, प्रश्न यह होना चाहिए कि ''इन विषयों पर *पवित्र बाइबल* क्या सिखाती है?''

इस प्रकार धार्मिक तौर पर सुरक्षित अगुआई के लिए विवेक की बात मानना ठीक नहीं है क्योंकि विवेक तो अपने उपलब्ध ज्ञान तक सीमित है। एक गौण कारण भी है कि हमें सही ढंग से अगुआई के लिए विवेक पर हमेशा निर्भर क्यों नहीं रहना चाहिए: कई लोगों ने अपने विवेक का इतनी बुरी तरह से दुरुपयोग किया है कि वे अब किसी भी प्रकार से सुरक्षित अगुआई नहीं दे सकते। विवेक को बलवान रखने के लिए, इसका व्यायाम होता रहना चाहिए (प्रेरितों 24:16)।

जब लोग विवेक को नज़रअन्दाज करते हैं, तो यह दूषित (तीतुस 1:15) और असंवेदनशील (1 तीमुथियुस 4:2) हो जाता है। दूषित, असंवेदनशील विवेक की तुलना एक खिड़की से की जा सकती है जो इतनी गन्दी है कि खिड़की लगती ही नहीं। मत्ती 6 में यीशु ने इसी प्रकार के एक उदाहरण का इस्तेमाल किया:

> शरीर का दीया आंख है। यदि तेरी आंख निर्मल हो तो तेरा सारा शरीर भी उजियाल होगा। परन्तु यदि तेरी आंख बुरी हो, तो तेरा सारा शरीर भी अंधियारा होगा। इस कारण वह उजियाला जो तुझ में है यदि अंधकार हो तो वह अंधकार कैसा बड़ा होगा (मत्ती 6:22, 23)।

आत्मिक बातों को परखने की योग्यता के लिए यीशु ने ''आंख'' शब्द का प्रयोग किया। यदि शारीरिक आंख अन्धी हो जाए, तो शरीर में ही अन्धेरा हो जाता है। इसी प्रकार, यदि अच्छाई और बुराई को परखने की शक्ति नष्ट हो जाए, तो आत्मिक अन्धेरा हो जाता है।

गलत जानकारी और दुरुपयोग से, विवेक की न्यायप्रणाली उल्ट-पुल्ट हो सकती है। यशायाह ने उन लोगों के बारे में कहा ''जो बुरे को भला और भले को बुरा कहते, जो अंधियारे को उजियाला और उजियाले को अंधियारा ठहराते'' हैं (यशायाह 5:20क,ख)। पौलुस ने उनके बारे में कहा जो ''अपनी लज्जा की बातों पर घमण्ड करते हैं'' (फिलिप्पियों 3:19ख)।

विवेक के दुरुपयोग के ये हवाले प्रश्न ''क्या हमें अपने विवेक की बात माननी चाहिए?'' के दूसरे उत्तर की आवश्यकता को चित्रित करते हैं:

''हां'': विशेषकर न्याय के मामलों में-हमें अपने विवेक की बातों को अनदेखा नहीं करना चाहिए

यह ध्यान देने के बाद कि धर्म में केवल विवेक ही सुरक्षित अगुआ नहीं है, हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि विवेक की आवश्यकता नहीं है; परन्तु, सच्चाई से कुछ भी छुप नहीं सकता। पौलुस ने स्पष्ट कहा कि जब हम अपने विवेक की बात टालते हैं, तो हम पाप करते हैं:

> मैं जानता हूं, और प्रभु यीशु से मुझे निश्चय हुआ है, कि कोई वस्तु अपने आप से अशुद्ध नहीं, परन्तु जो उस को अशुद्ध समझता है, उसके लिए अशुद्ध है (रोमियों 14:14)।
>
> परन्तु जो संदेह कर के खाता है, वह दण्ड के योग्य ठहर चुका; क्योंकि वह निश्चित धारणा से नहीं खाता, और जो कुछ विश्वास से नहीं, वह पाप है (रोमियों 14:23)।

यहां ''विश्वास'' शब्द उस विश्वास के लिए नहीं है जो परमेश्वर के वचन से आता है (रोमियों 10:17), बल्कि मूल्यों को निर्धारित करने की किसी की अपनी प्रणाली है, जिससे कोई किसी बात को सही या गलत *मानता* है। यदि कोई व्यक्ति उसके विरुद्ध काम करे जिसे वह सही या गलत मानता है (अन्य शब्दों में, अपने विवेक की बात टाले), पौलुस कहता है कि वह आदमी पाप करता है और दोषी है।[3]

विवेक की बात टालना पाप क्यों है? क्योंकि जब बार-बार कोई अपने विवेक के विरुद्ध जाता है, तो वह विवेक के प्रभाव को कम करता है। वह परमेश्वर प्रदत्त संरक्षण को नष्ट कर रहा होता है। पिछले पाठ में, मैंने विवेक की तुलना नाड़ी तन्त्र से की थी। यदि मैं आग से दूर रहने के लिए अपने नाड़ी तन्त्र की चेतावनियों को नज़रअन्दाज कर दूं, तो मेरे नाड़ी तन्त्र को (और इसके साथ मुझे) भी नष्ट होने में अधिक देर नहीं लगेगी।

एक लड़की ने विवेक की तुलना हमारे अन्दर घूम रहे एक तेज़ दांतों वाले पहिये से की

है। उसका कहना है कि ''जब हम वह नहीं करते जो हमें करना चाहिए तो तेज़ दांत कष्ट देते हैं!'' फिर उसने जोड़ा, ''परन्तु यदि हम वह करते रहें जो हमें नहीं करना चाहिए, तो तेज़ दांत घिसने लगते हैं जिससे अधिक कष्ट नहीं होता।'' एक और बात हम जोड़ सकते हैं: ''और यदि हम वह करने की ज़िद करें जो हमें नहीं करना चाहिए तो धीरे-धीरे वे तेज दांत पूरी तरह से घिस जाएंगे और बिल्कुल भी कष्ट नहीं होगा।''

मैंने एक कहानी पढ़ी थी जिसमें विवेक को नज़रअन्दाज करने के ख़तरे के बारे में बताया गया था। स्काटलैण्ड में किसी ख़तरनाक तट से दूर एक बोया के साथ घण्टी बांधकर रख दी गई। समुद्री जहाज का एक कप्तान उस क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों पर आग बबूला हो गया। शराब पीकर क्रोध में उसने बोया से घण्टी को काटकर उनसे बदला ले लिया। बाद में, उस तट से दूर इस कप्तान का जहाज़ तूफ़ान में फंस गया। उसने उस घण्टी की आवाज सुनी जिसने उसे सुरक्षा के लिए मार्गदर्शन देना था, परन्तु उसे उसकी आवाज का कोई लाभ न हुआ। वह और जहाज़ पर बैठे सभी लोग उसकी मूर्खता से डूब गए। कहानी का अन्त इस शिक्षा के साथ हुआ: कोई मनुष्य यदि अपने विवेक को बोलने से रोकता है, तो आवश्यकता पड़ने पर यह वहां उसके पास होगा।

पौलुस ने 1 तीमुथियुस 1:19 में अलग ही समुद्री उदाहरण का इस्तेमाल किया: ''विश्वास और उस अच्छे विवेक को थामे रहे, जिसे दूर करने के कारण कितनों का विश्वास रूपी जहाज डूब गया।'' ''दूर किए गए'' विवेक की तुलना जहाज के कम्पास से की जा सकती है जो अब सही काम नहीं कर रहा था, इसलिए वह जहाज के टूटने का कारण बनता है।

जब बार-बार विवेक को नज़रअन्दाज किया जाता है तो क्या होता है, ऐसी स्थिति में यह समझाने में सहायता करने के लिए बाइबल भिन्न-भिन्न शब्दों का इस्तेमाल करती है। उपेक्षित विवेक लोहे से दागी गई उन नाड़ियों की तरह है जो इतनी असंवेदनशील हो गई हैं कि अब बिल्कुल ही कार्य नहीं करतीं (1 तीमुथियुस 4:2)। परन्तु, मेरे लिए सबसे अधिक चौंकाने वाली तुलना मत्ती 6:22, 23 में यीशु द्वारा प्रयुक्त उदाहरण है, जिसमें उसने आंखों के अन्धे होने की बात की। यदि हमें पता चले कि जितनी बार हम पाप करते हैं, उतनी ही बार हमारी दृष्टि कम होती जाती है तो क्या होता? क्या इससे हम में से बहुत से लोगों को पाप न करने की प्रेरणा नहीं मिलती? यीशु हमें यह बताना चाहता है कि अपने विवेक की बात टालने पर हमारी शारीरिक दृष्टि बेशक कम न हो, परन्तु हमारी आत्मिक दृष्टि कमजोर हो जाती है। पाप करने के विरुद्ध यह और भी शक्तिशाली अवरोधक होना चाहिए।

बाइबल में ऐसे लोगों के असंख्य उदाहरण हैं जिन्होंने अपने विवेक की बात टालकर उसे चुप करवा दिया। मैं राजा शाऊल के बारे में विचार करता हूं, जिसने प्रतिज्ञा के साथ अपना शासन आरम्भ किया था परन्तु फिर उसने शक्ति के लोभ में हथियार डाल दिए। अन्त में, उसका मन और हृदय इतने कठोर हो गए कि प्रभु ने अपने आत्मा को उससे उठा लिया (1 शमुएल 16:14क)।

सबसे अधिक चौंकाने वाले उदाहरणों में शाऊल का उत्तराधिकारी, दाऊद था। सामान्यत: कोमल विवेक वाले आदमी के रूप में प्रसिद्ध दाऊद ने, पाप के ऊपर पाप जमा करके कई हफ्तों तक सफलतापूर्वक अपने विवेक की सांस रोके रखी। यदि उसके विवेक को होश में लाने के लिए उसका कोई मित्र न होता (2 शमुएल 12:1-14), तो वह उसे सदा के लिए दफ़न कर देता।

यदि किसी के विवेक को गलत जानकारी दी गई हो, तो उसे फिर से शिक्षित करने की आवश्यकता है। साथ ही, जब तक उसे फिर से सिखाया नहीं *जाता,* तब तक उसे चाहिए कि वह विवेक की बातों को नज़रअन्दाज न करे। उदाहरण के तौर पर, आइए कल्पना करते हैं कि एक आदमी को जीवन भर सिखाया जाता रहा कि कुछ विशेष परिस्थितियों में परमेश्वर नहीं चाहता कि वह मांस खाए। बाइबल सिखाती है कि यदि कोई मांस खाना चाहता है तो इसमें कोई बुराई नहीं है (1 तीमुथियुस 4:1-5)। परन्तु, जब तक वह व्यक्ति बाइबल की सच्चाई को सीख नहीं लेता, तब तक उसे उसी प्रकार जैसे वह पहले करता था, मांस नहीं खाना चाहिए। इस सिद्धांत की तुलना उस पुल को पार करने से की जा सकती है जिसके बारे में हमें लगता है कि वह असुरक्षित है। जब तक हमें लगता है कि पुल असुरक्षित है, इससे दूर रहना चाहिए। जब अन्त में हमें समझ आ जाए कि पुल हमारा बोझ झेल सकता है, तभी इसे पार करना चाहिए, पहले नहीं।

विवेक को फिर से शिक्षित करने की प्रक्रिया निरन्तर रहने वाली है। हम इसे कैसे सिखाते हैं? पहले, हमें ध्यानपूर्वक और लगातार अपने जीवनों के लिए परमेश्वर की इच्छा को अच्छी तरह समझने की निरन्तर कोशिश करके बाइबल अध्ययन करना चाहिए। दूसरा, हमें परमेश्वर के वचन की रोशनी में अपनी समझ को जांचने के लिए अपने मन खोलने चाहिए।

साथ ही, जब तक वचन से हमें यह समझ न आ जाए कि हमारी पहली धारणा गलत है तब तक हम अपने विवेक की बात को ही मानें। प्रसिद्ध सुधारक, मार्टिन लूथर ने अपने मुकदमे में यह उत्कृष्ट वक्तव्य दिया था:

> जब तक मैं वचन से और स्पष्ट तर्क से मान न लूं-मैं पोपों और कौंसिलों के अधिकार को नहीं मानता, क्योंकि वे परस्पर विरोधी हैं-मेरा विवेक परमेश्वर के वचन का बन्धा हुआ है। मैं किसी भी बात को गलत समझकर छोड़ नहीं सकता और न ही छोडूंगा, क्योंकि विवेक के विरुद्ध जाना न तो ठीक है और न ही सुरक्षित। परमेश्वर मेरी सहायता करे। आमीन।[4]

सारांश

आशा है कि अब आपको प्रश्न ''क्या हमें विवेक की बात माननी चाहिए?'' के उत्तर के स्पष्ट ''हां/नहीं'' की समझ आ गई है। धार्मिक मामलों में हमें केवल अपने विवेक की बात ही *नहीं* माननी चाहिए। दूसरी ओर, परमेश्वर द्वारा स्थापित इस सुरक्षा

को धूमिल करने से बचाने के लिए हमें अपने विवेक की बात माननी *चाहिए।* हमें अपने विवेक को सिखाते रहना चाहिए कि क्या सही है और क्या गलत। हमें अपनी धारणाओं को शोधते रहना चाहिए।[5]

सुझाव दिया गया है कि जब विवेक वैसा ही होता है जैसा परमेश्वर चाहता है, तो यह *प्रभावशाली, ज्ञान सम्पन्न और व्यावहारिक* होता है। एक पाठ में, हमने प्रभावशाली विवेक की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था; इस अध्ययन में, हमने विवेक के ज्ञान सम्पन्न होने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया; अगले पाठ में, हम विवेक के व्यावहारिक होने की आवश्यकता की परख करेंगे।

अन्त में, आइए 1 पतरस 3:21 पर विचार करते हैं। इस पद में, पतरस ने ज़ोर दिया कि ''बपतिस्मा, यीशु मसीह के जी उठने के द्वारा, अब तुम्हें बचाता है।'' परन्तु, उसने संकेत दिया कि बपतिस्मा ''शरीर के मैल को दूर करने का अर्थ नहीं है, परन्तु शुद्ध विवेक से परमेश्वर के वश में हो जाने का अर्थ है।'' अन्य शब्दों में, बपतिस्मा लेने का एक कारण अब दोषपूर्ण विवेक न रखना है।

परमेश्वर का वचन कहता है कि आपको यीशु में विश्वास (भरोसा) करके (यूहन्ना 3:16), अपने पापों से मन फिराकर (प्रेरितों 17:30), अपने मन के विश्वास का अंगीकार करके (रोमियों 10:9, 10) अपने पापों की क्षमा के लिए (पानी में) बपतिस्मा ले लेना चाहिए (प्रेरितों 2:38) और फिर मृत्यु तक विश्वासी बने रहना चाहिए (प्रकाशितवाक्य 2:10)। यदि आपके विवेक को *ज्ञान हो गया* है, तो वह यह मान लेगा कि ये शिक्षाएं सच्ची हैं। यदि आपका विवेक *प्रभावशाली* है, तो कहेगा कि आपको ये बातें करनी *चाहिए।* अब, आपको वह काम करके जो आपको करने की आवश्यकता है, अपने विवेक को *व्यवहार* में लाना चाहिए। अपने विवेक को परमेश्वर के सामने अभी ''हां'' में उत्तर देने दें।

पाद टिप्पणियां

[1]ये उदाहरण जानबूझ कर सामान्य रखे गए हैं। गलत विवेकी कार्यों के व्यक्तिगत उदाहरण जोड़कर इनमें सुधार किया जा सकता है। [2]''बलवान'' का अर्थ सब मामलों में ज्ञानी होना नहीं, परन्तु विचाराधीन मामले में ज्ञानी होना है। एक मामले में ''बलवान (ज्ञानवान) विवेक'' होना और किसी और में ''निर्बल (अज्ञानी) विवेक'' होना सम्भव है। शायद इसीलिए रोमियों 14; 15 में उदाहरणों के लिए *दो* विषयों का इस्तेमाल किया गया है: मूर्तियों को भेंट किए हुए मांस खाने के मामले में यहूदी मसीहियों का विवेक बलवान था परन्तु विशेष यहूदी त्यौहारों को मनाने के सम्बन्ध में निर्बल। दूसरी ओर, मूर्तियों के सामने भेंट किए मांस को खाने के मामले में अन्यजाति मसीहियों का विवेक निर्बल था परन्तु विशेष यहूदी पर्वों को मनाने के सम्बन्ध में उनका विवेक बलवान था। [3]शास्त्र के इस भाग को ध्यान से पढ़ें: यदि मेरा विश्वास है कि कोई काम मेरे लिए गलत है, तो आवश्यक नहीं कि ये दूसरों के लिए भी गलत हो, परन्तु मेरे लिए यह अपने आप ही गलत है। [4]रोलेण्ड एच. बेनटौन, *हेयर आई स्टैण्ड, ए लाइफ ऑफ मार्टिन लूथर*। [5]पाठ के मुख्य सिद्धांतों पर विचार करने के लिए और समय दिया जा सकता है।